संगति

भाग – 10

'काल' अथवा 'समय' की 'संगति'

समस्त सृष्टि तीन काल में विचरण करती है —

'भूत' (past)
'भविष्य' (future)
'वर्तमान' (present)

'भूत' काल अथवा बीते हुए समय में जो कुछ **घट चुका है,** हम उन **तजुरबों** तथा घटनाओं को याद करके, उन का **अच्छा या बुरा 'असर' लेते हैं।** इस प्रकार हम **'काल' अथवा समय की 'संगति' करते हैं।**

यदि हमारा **पिछला जीवन** सुखद व्यतीत हुआ हो, तब हम उस अच्छे सुखदायी जीवन को **'याद'** करके उसकी **अनुपस्थिति** की **'निराशा' में 'पछताते' तथा दुखी होते हैं।**

दूसरी ओर **पिछला जीवन** दुखदायी व्यतीत हुआ हो, तो हम **वर्तमान सुखद जिंदगी के रस/भोग में गलतान होकर 'अकड़े' फिरते हैं।**

इसी प्रकार हम अपने भविष्य के विषय में **'आशा/मनसा/तृष्णा' अनुसार सोचते तथा योजनाएँ बनाते हैं** तथा मन ही **मन ख्याली/उड़ाने लगाते रहते हैं।** यदि हमारी ये **'आशा/मनसा' पूरी न हों, तब हमें अत्यन्त 'निराशा' तथा दुख होता है।**

इन तीन कालों अथवा **'भूत', 'वर्तमान' तथा 'भविष्य' के किसी न किसी** ख्याल में हमारा मन **खचित** रहता है तथा इन ख्यालों द्वारा ही हम **'काल' की 'संगत' या 'कुसंगत' करते हैं।**

हमारे 'भूत काल' में घटी घटनाओं में से सुखद तो कम ही याद रहती हैं, परन्तु हमारे साथ लोगों द्वारा की गयी **बेइन्साफी, ज्यादती, वैर/विरोध आदि हमारे मन/चित्त/अन्तःकरण में बहुत गहरे समाए होते हैं, जिन्हें याद करके हम जलते/भुनते, सुलगते तथा दुखी होते रहते हैं।**

दूसरे शब्दों में 'भूत काल' में हुए **'कड़वे' तथा दुखदायी अनुभवों तथा घटनाओं की 'फाइलें' हमारे अन्तःकरण में जमा होती रहती हैं।** मौका मिलने पर पुरानी ईर्ष्या/द्वेष, वैर/विरोध, घृणा आदि की **फाइलों को याद करके अपनी भीतरी मलिन ज़हरीली 'भड़ास' निकाल कर मन 'हल्का' करते हैं।**

जे अपनी बिरथा कहहु अवरा पहि
ता आगै अपनी बिरथा बहु बहुतु कढासा ।। ¼i - 860½

दुख कीआ पंडा खुल्हीआ सुखु न निकलिओ कोइ ।।
दुख विचि जीउ जलाइआ दुखीआ चलिआ रोइ ।। ¼i - 1240½

दुखिआरे दुखिआरिआं मिलि मिल अपणे दुख रुंवदे ।
¼ok-Hkk-x- 5@4½

इस प्रकार बीते हुए समय की **कड़वी घटनाओं तथा ज़हरीले मनोभावों से हमारा मन 'कुसंगति' करता रहता है।**

इसी जन्म में कई अच्छी/बुरी/दुखदायी **'घटनाएँ'** हमारे संग घटती हैं —
जिन्हें याद करके हम —

आहें भरते हैं
कुढ़ते हैं
जलते हैं
अभ्यास करते हैं
ईर्ष्या/द्वेष में वृद्धि करते हैं
'ऍलरजी' को दृढ़ करते हैं
'काली सूची लम्बी करते हैं'
जीवन कड़ुवा बनाते हैं
अन्तःकरण मैला करते हैं।

हमारी मृत्यु के पश्चात इस जन्म की **'घटनाओं' की याद तो** हमारे **अन्तःकरण के साथ नहीं जाती —** परन्तु इनकी अच्छी/बुरी **'रंगत' अथवा तत्/सार** (essence) अन्तःकरण द्वारा अगले जन्मों में भी हमारी **आत्मा के साथ ही जाती है।** इसी कारण कई बच्चे जन्म से ही गुस्सैल, लड़ाकू, ईर्ष्यालु, डरावने तथा अनेक बुरी आदतों वाले होते हैं।

वे बच्चे पूर्व जन्मों की दृढ़ की हुई **बुरी आदतों की 'रंगत' — अपने अन्तःकरण द्वारा साथ ले कर आते हैं तथा पूर्व जन्म की मलिन 'रंगत' अनुसार ही, इस जन्म का नवीन 'जीवन-मार्ग' बनता है,** जिससे जीवन और भी गंदला, दुखदायी तथा नरकमय बन जाता है।

इस विचार से सिद्ध होता है कि अकाल पुरुष ने जीवों पर अत्यन्त कृपा की है, जो पूर्व जन्मों की **'घटनाओं' की याद अन्तःकरण पर अंकित नहीं होती। केवल उन की 'रंगत' अथवा तत्-सार ही अन्तःकरण के साथ चिपका रहता है — जो प्रत्येक जन्म में और अधिक तीव्र तथा तीक्ष्ण होता जाता है।** अन्यथा, यदि पूर्व जन्मों की समस्त अनगिनत घटनाएं इस जन्म में **याद रहतीं,** तो पिछले अनेक जन्मों के स्वयं अंगीकृत **घृणित 'जीवों' की हमारे मन में 'भीड़' लगी रहती तथा ईर्ष्या-द्वेष, कुढ़न तथा जलन के अथाह ज़हरीले समुन्द्र में ही हमारा 'अस्तित्व' खो जाता।** इस प्रकार कई जन्मों की **निरन्तर मलिन 'कुसंगत' से** ऐसी रूहें ढीठ, कठोर, साकत, मनमुख, मूढ़ बन जाती हैं।

दूसरे शब्दों में ये **'अभागी' रूहें अनजाने ही** अपने गहन-गुप्त **अन्तःकरण की 'तत्-सार' रंगत' की 'कुसंगति' करती रहती हैं।** इसके विषय में उन्हें सूझ नहीं होती।

केवल इस जन्म की **घटनाओं की याद** से ही हमारा जीवन **'दूभर' हुआ रहता है** — तब अनेक जन्मों की **घटनाओं तथा एलरजी** (*allergy*) **वाला 'हज़ूम' कितना दुखदायी तथा भयावह हो सकता है।** इसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

इसलिए पूर्व जन्मों की अनगिनत घटनाओं की **'यादों' को 'मिटाने' की बख्शिश के लिए, हमें अकाल पुरुष का अत्यन्त शुक्राना करना चाहिए।**

'भूत' काल की दुखदायी यादों तथा **'भविष्य' के लिए 'आशा-मनसा-तृष्णा' की योजनाओं** में ही हम **'वर्तमान' अमूल्य समय को व्यर्थ खो देते हैं।**

इसलिए हमें **'भूत' तथा 'भविष्य' काल की याद या कुसंगत करने से रोका है तथा** वर्तमान अथवा **'सदैव-तत्क्षण' में विचरण करने का आदेश दिया गया है।**

सुरग बासु न बाछीऐ डरीऐ न नरकि निवासु ।।
होना है सो होई है मनहि न कीजै आस ।। ¼i - 337½

कबीर इह चेतावनी मत सहसा रहि जाइ ।।
पाछै भोग जु भोगवै तिनको गुडु लै खाहि ।। ¼i - 1366½

वरतमान विचि वरतदा होवणहार सोई परवाणा ।

(वा. भा. गु. 18@21½

वरतमान वीचि विसवे होइ इकीह सहजि घरि आइआ ।

(वा. भा .गु. 24@9½

इस प्रकार यदि ये 'क्षण&पल' लगातार अटूट नाम&सिमरन&अभ्यास&कमाई में लीन हों, तब हम आत्मिक मंडल को 'सदैव&तत्क्षण' अनुभव करते हैं।

परन्तु इन उत्तम कल्याणकारी उपदेशों को भुला कर, या इन से **जान बूझ कर लापरवाह होकर, हम इनके ठीक 'विपरीत' अपनी मलिन रुचियों के पुराने प्रवाह में बीते हुए समय के वेग तथा दुखदायी तजुरबों को — बार&बार याद करके, घोट&घोट कर, अभ्यास करके दृढ़ करते जाते हैं।** इस प्रकार — ईर्ष्या, द्वेष, वैर, विरोध, घृणा, जलन, एलरजी आदि, की यादें **हमारे भीतर और भी गहरी** — धँसती जाती हैं, बसती जाती हैं, रसती जाती हैं, समाती जाती हैं जिससे हमारा **'वर्तमान जीवन' और भी कड़ुवा, ज़हरीला तथा दुखदायी होता जाता है।**

अनावश्यक 'भूत' काल की यादों तथा अनिश्चित 'भविष्य' के विषय में फिक्र – चिन्ताओं से 'मलिन रंगत' और भी सूक्ष्म, प्रबल तथा 'दामनिक' होती जाती है — जिसकी **'ज़हरीली रंगत' वर्तमान जीवन के हर पक्ष में सहज&स्वभाव अनजाने ही प्रकट होती रहती है, जिससे हमारा जीवन नरकमय बनता जाता है।**

यहीं बस नहीं, **रोष&शिकायत, ईर्ष्या&द्वेष, वैर&विरोध, घृणा आदि की 'मलिन रंगत' हमारे अन्तःकरण द्वारा अगले जन्मों तक हमारे साथ ही जाती है।** इस प्रकार हमारा मन, मलिन **ज़हरीली 'कुसंगत' में कई जन्मों तक गलतान हुआ रहता है।**

मन की 'तख्ती' पर लिखे हुए 'काले लेख' तथा ज़हरीली **'मानसिक रंगत'** तो किसी प्रकार मिटाई जा सकती है — परन्तु **'अन्तःकरण' में जन्मों&जन्मों से गहरी अंकित की हुई 'मलिन रंगत' को मिटाना असंभव है।**

जब तक मन से ये **'भूतकाल' के गहरे खुदे हुए 'काले लेख' मिटाये नहीं जाते** अथवा मन की 'तख्ती' **बिल्कुल साफ नहीं हो जाती** — तब तक हम **पुराने नरकमय 'जीवन प्रवाह' में बहते जायेगें तथा भूतकाल की 'ज़हरीली रंगत' की 'कुसंगत' अनजाने ही सहज स्वभाव होती रहेगी।**

इस प्रकार —

अपने मलिन ख्यालों द्वारा स्वयं **'अंगीकार' किये हुए,**
बार&बार याद करके **'पाले हुए'**,
तीव्र घृणा से **दामनिक** (dynamic) **बनाये हुए,**
एलरजी (allergy) से अन्तःकरण में **'बसाये' हुए**,
सिमरन करके **'रूपमान' किये हुए,**

'मनोकल्पित भूतों' से हम विवश हो कर, खुद ब खुद 'कुसंगति' करते रहते हैं।

यदि हमें इन अनहोने गुप्त **मनोकल्पित 'ख्याली भूतों'** के विषय में सूझ या **अहसास भी हो जाये** तथा तंग आ कर, इन से **छुटकारा पाना चाहते हों** तो भी ये **हमारा 'पीछा' नहीं छोड़ते,** क्योकि इन्होंने **हमारे अन्तःकरण पर जबरदस्त 'कब्जा' किया हुआ है।**

आज कल के किरायेदारों की भाँति — ये **स्वयं बसाये हुए 'भूतकाल' के दुखदायी 'मनोकल्पित भूत' हमारे अन्तःकरण पर कब्जा करके हमारे जीवन के हर पक्ष पर अपनी मलिन रंगत चढ़ाते रहते हैं। इनसे छुटकारा असम्भव है, जिस कारण हमें निशिचित ही ज़हरीला जीवन व्यतीत करना पड़ता है।**

अवरि पंच हम एक जना किउ राखउ घर बारु मना ।।
मारहि लूटहि नीत नीत किसु आगै करी पुकार जना ।। ¼i - 155½
पंच बिखादी एकु गरीबा राखहु राखनहारे ।।
खेदु करहि अरु बहुतु संतावहि आइओ सरनि तुहारे ।। ¼i -205&6½
बैर बिरोध काम क्रोध मोह ।।
झूठ बिकार महा लोभ धोह ।।
इआहू जुगति बिहाने कई जनम ।।
नानक राखि लेहु आपन करि करम ।। ¼i - 267&68½

इन पंचन मेरो मनु जु बिगारिओ ।।
पलु पलु हरि जी ते अंतरु पारिओ ।। .....

इन दूतन खलु बधु करि मारिओ ।।
बडो निलाजु अजहू नही हारिओ ।। ¼i - 710½

इन्हि माइआ जगदीस गुसाई तुम्हरे चरन बिसारे ।।
किंचत प्रीति न उपजै जन कउ जन कहा करहि बेचारे ।। ¼i - 857½

इसीलिए गुरबाणी में बताया गया है कि **'गुरू की कृपा'** तथा **'साध संगति' द्वारा ही** इस दुरवदायी मलिन **'जीवन चक्र से छुटकारा हो सकता है।**

साधसंगति होइ निरमला कटीऐ जम की फास ।। ¼i - 44½

मै जुगि जुगि दयै सेवड़ी ।।
गुरि कटी मिहडी जेवड़ी ।। ¼i - 74½

आपु तिआगि मिटै आवण जाणा ।।
साध कै संगि पारब्रहमु पछाणा ।। ¼i - 183½

याहू जतन करि होत छुटारा ।।
उआहू जतन साध संगारा ।। ¼i -259½

मोह रोग सोग तनु बाधिओ बहु जोनी भरमाईऐ ।।
टिकनु न पावै बिनु सतसंगति किसु आगै जाइ रूआईऐ ।। ¼i - 532½

करि किरपा जन लीए छडाइ ।।
जिस के से तिनि रखे हटाइ ।। ¼i - 865½

हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण 'वर्तमान काल' से 'भूतकाल' में **परिवर्तित** हो रहा है।

'भूतकाल' हमारे वश में से **'सरक' चुका है।** 'भविष्य काल' **अनिश्चित है,** जिससे हम अन्जान हैं।

इसलिए **हमारे हाथ में केवल वर्तमान का 'काल' या 'समय' ही है,** जिसे हम अपनी मर्जी से **अच्छी या बुरी ओर लगा सकते हैं।**

दूसरे शब्दों में **'वर्तमान' के क्षण पल ही हमारे वश में हैं। यही 'क्षण' अगले ही पल 'भूतकाल' में बदल कर हमारे वश से बाहर हो जायेगा।**

इसी लिए गुरबाणी में हमें **अपने वश वाले वर्तमान 'क्षण/पलों' को संभालनें की ताकीद की गयी है।** क्योकि इसी **वर्तमान 'क्षण/पलों' द्वारा ही हम अपने जीवन को 'संगति' या 'कुसंगति' द्वारा अच्छी या बुरी 'दिशा' दे सकते हैं।**

दूसरे शब्दों में **इन वर्तमान के 'क्षण/पलों' का सही उपयोग करें, साध/संगति में गुजारे,** तब ही इन **'क्षण/पलों की सामूहिक रंगत द्वारा हमारा उच्च, पवित्र, दैवीय गुरमुख जीवन बन सकता है।**

कवन संजोग मिलउ प्रभ अपने ।।
पलु पलु निमख सदा हरि जपने ।। ¼i - 806½

काहू बिहावै बेद अरु बादि ।।
काहू बिहावै रसना सादि ।।
काहू बिहावै लपटि संगि नारी ।।
संत रचे केवल नाम मुरारी ।।

काहू बिहावै खेलत जूआ ।।
काहू बिहावै अमली हूआ ।।
काहू बिहावै पर दरब चुराए ।।
हरि जन बिहावै नाम धिआए ।। .....

काहू बिहावै नट नाटिक निरते ।।
काहू बिहावै जीआ इह हिरते ।।
काहू बिहावै राज महि डरते ।।
संत बिहावै हरि जसु करते ।। ¼i - 914½

एक चित जिहि इक छिन धयायो ।।
काल फास के बीच न आयो ।। ¼ik- 10½

इस प्रकार यदि हमारा मन **वर्तमान के 'क्षण/पल' को संभाल कर लगातार नाम/सिमरन/अभ्यास कमाई करता रहे** तब ही **अटूट 'सदीव/वर्तमान' का आत्मिक रंग/रस पान कर सकते हैं।**

इन 'क्षण/पलों' के निरन्तर प्रवाह में ही सारा जीवन प्रवृत अथवा 'संगत' या 'कुसंगत' करके अच्छा या बुरा जीवन बनता है — परन्तु इन महत्वपूर्ण तथा कीमती 'क्षण/पलों' को हम व्यर्थ खो रहे हैं।

हरि जसु रे मना गाइ लै जो संगी है तेरो ।।
अउसरु बीतिओ जातु है कहिओ मान लै मेरो ।। ¼i - 727½

तिलु तिलु पलु पलु अउध फुनि घाटै बूझि न सकै गवारु ।। ¼i - 1200½
बीत जेहै बीत जैहै जनमु अकाजु रे ।। ¼i - 1352½
दिनु राती आराधहु पिआरो निमख न कीजै ढीला ।। ¼i - 498½

Forget the dead 'past' which is beyond our control.
Do not worry about the 'Future', which is uncertain.
Live in the reality of the 'present' and make-the best of it.

किसी 'ख्याल' या 'मनोभाव' को **बार&बार याद करके हम उस ख्याल की अच्छी या बुरी 'भावना' से —**

'छुह' लेते हैं
'संग' करते हैं
'रंगत' लेते हैं
'संगति' करते हैं
'अभ्यास' करते हैं
'दृढ़' करते हैं।

इस प्रकार वे ख्याल, मनोभाव या भावनाएँ हमारे मन&बुद्धि चित्त में सहज स्वभाव ही उतर जाते हैं। लगातार अभ्यास द्वारा ये मानसिक ख्याल या मनोभाव हमारे **अन्तःकरण में धँस, बस, रस तथा समा जाते हैं।**

ज्यों&ज्यों ये ख्याल, मनोभाव या भावनाएँ हमारे मन&चित्त&अन्तःकरण में **उतरते या धँसते जाते हैं,** त्यों&त्यों **ये 'भावनाएँ' अति सूक्ष्म होती जाती हैं, तथा 'एटम' की तरह दामनिक** (dynamic) **हो जाती हैं।**

इस **दामनिक दशा** में हमारे ख्याल या **भावनाएँ** अति सूक्ष्म मानसिक **'भावनाएँ'** नहीं रहती अपितु अति **सूक्ष्म प्रबल दामनिक 'व्यक्तित्व'** (dynamic personality) **का सूक्ष्म रूप धारण कर लेती हैं** — जिससे हमारा मन दिन&रात —

'मेल करता है'
'संग' करता है

'संगति' करता है
'परसता' है
'छुह' लेता है
'प्रभाव' लेता है
'रंगत' लेता है
जीवन ढालता है

बाहरी **दिखावटी** रुझानों से जब मन रिक्त हो जाये तथा बाहर की **किसी उक्साहट का कारण न भी हो** — तो भी हमारे अन्तःकरण में स्वयं **पाली-पोसी तथा शक्तिमान बनाई दामनिक गुप्त 'मलिन शख्सीयत' मौका देख कर, हमारे मन को चिंगारी लगा देती है,** तथा हम अपनी ही **सुलगायी अग्नि अथवा उस खास वाशना में जलते-भुनते रहते हैं।**

ऐसी **आन्तरिक गुप्त दामनिक सूक्ष्म मलिन शख्सीयत** को ही गुरबाणी में **'सर्पनी', 'छलणी', 'नागनी', 'मोहणी', 'माया', 'पंच बिखादि', 'पंच चंडाल', 'ठगवारी' आदि नामों से दर्शाया गया है।**

मारु मारु **सपनी** निरमल जलि पैठी ।।
जिनि त्रिभवणु डसीअले गुर प्रसादि डीठी ।। ¼i - 480½

माइआ होई **नागनी** जगति रही लपटाइ ।। ¼i - 510½

माई **माइआ छलु** ।। ¼i - 717½

माइआ ऐसी **मोहनी भाई** ।। जेते जीअ तेते डहकाई ।। ¼i - 1160½

इह **ठगवारी** बहुतु घर गाले ।। ¼i - 1347½

इस प्रकार हम **बाहर की कुसंगत** से तो किसी उपाय द्वारा बच सकते **हैं,** परन्तु **अन्तःकरण की मलिन 'रंगत' की 'कुसंगत' से बचना असम्भव है, क्योकि यह तो हमारे अन्तःकरण में धँस-डस-रस कर समा चुकी है** तथा दिन रात हमारे मन **पर अनेक प्रकार से वार-प्रहार करने के लिए तत्पर रहती है।**

पंच दूत मुहहि संसारा ।।
मनमुख अंधे सुधि न सारा ।। ¼i - 113½

बिखै बिखै की बासना तजीअ नह जाई ।।
अनिक जतन करि राखीऐ फिरि फिरि लपटाई ।। ¼i - 855&56½

किरतु ओन्हा का मिटसि नाहि ।।
ओइ आपणा बीजिआ आपि खाहि ।। ¼i - 1183½

कबीर आई मुझहि पहि **अनिक करे करि भेस ।।** ¼i - 1364½

माइआ ममता करतै लाई ।।
एहु हुकमु करि सिसटि उपाई ।। ¼i - 1261½

अकाल पुरुष ने ये **'द्वैत भाव' वाली प्रकृति अथवा 'माया' रची है।**

इस माया की प्रवृत्ति अथवा **'प्रकृति' के अपार नाटक** (drama) को चलाने के लिए 'जीव' के अंदर **'पाँच तत्' या 'वाशनाएँ'** — काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार का प्रवेश हुआ।

पंच पूत जणे इक माइ ।।

उतभुज खेलु करि जगत विआइ ।। ¼i - 865½

इन वाशनाओं वाली मायिकी 'प्रकृति' का मुखिया या **'राजा' 'अहम्' है,** क्योकि शेष **समस्त 'वाशनाएं' इस अहम् में से ही उत्पन्न होती हैं।**

हउमै रोगि सभु जगतु बिआपिआ

तिन कउ जनम मरण दुखु भारी ।। ¼i - 735½

हउमै रोगु मानुख कउ दीना ।। ¼i - 1140½

इन 'पाँच चोर' या **'बिखादी' रूप 'वाशनाओं'** में से कई अन्य सूक्ष्म **वाशनाओं के 'तरंग' उठते हैं** — जिन्हें **'हठीली फौज'** कहा गया है।

वडी कोम वसि भागहि नाही **मुहकम फउज हठली रे ।।** ¼i - 404½

पांच पचीस मोह मद मतसर आडी परबल माइआ ।। ¼i - 1161½

लाख अहेरी एकु जीउ केता बंचउ कालु ।। ¼i - 1367½

सरवर पंखी हेकड़ो **फाहीवाल पचास ।।** ¼i - 1384½

यहाँ याद रखने वाला **जरूरी 'नुक्ता'** यह है कि इन **'वाशनाओं'** या इस की **'हठीली फौज'** का कोई **स्थूल रूप नहीं है।** ये **केवल हमारे ख्यालों, 'मनोभाव' तथा 'भावनाओं' पर ही प्रभाव डालती हैं तथा अपनी अपनी 'रंगत' चढ़ा देती है ।**

इसलिए 'रव्यालों', मनोभावों तथा 'कर्मों' द्वारा ही इन **वाशनाओं का प्रकटाव होता है।**

इन सूक्ष्म 'वासनाओं' को हम **बार&बार याद करके, अभ्यास करके, संगति करके, कमाई करके, दृढ़ कर के 'प्रबल' करते जाते हैं।**

धीरे-धीरे ये **वाशनाएँ हमारे मन&चित्त&अन्तःकरण में —**

धँस जाती हैं, बस जाती हैं, रस&रूप हो जाती हैं।

इस प्रकार इन **वाशनाओं की 'रंगत' हमारे** अन्तःकरण में ओत-प्रोत होकर समा जाती है। यहाँ तक कि ये **'वाशनाएँ' हमारे मानसिक 'आपे' पर 'कब्जा' कर लेती हैं तथा हम इन के 'मुफ्त&गुलाम' बन जाते हैं।**

ये **पाँचों वाशनाएँ** हमारे मन पर मौका मिलते ही, अपना अपना प्रभाव **डालती रहती हैं।** परन्तु हमारे **अभ्यास अनुसार कोई एक 'विशेष वाशना'** हमारे उपर **'हावी' अथवा 'प्रबल' हो जाती है** जिसकी **'विशेष रंगत' अनुसार हम दिन&रात** सोचते विचारते हैं, इच्छाएँ करते हैं। भावनाओं की उड़ान भरते हैं, योजनाएँ बनाते हैं, परीश्रम करते हैं, कर्म करते हैं, परिणाम भोगते हैं।

दूसरे शब्दों में हमारे **'मायिकी अस्तित्व' को इस विशेष 'वाशना' का 'भूत' चिपक जाता है तथा 'रूपमान' होकर हमें किसी विशेष वाशना अथवा 'काम&क्रोध', 'लोभ' आदि की कैद में 'जकड़' लेता है** जिस में से **'साध-संगति' तथा गुरू की कृपा बिना, 'छुटकारा' नहीं हो सकता ।**

करि करि हारिओ अनिक बहु भाती छोडहि कतहूं नाही ।।
एक बात सुनि ताकी ओटा साधसंगि मिटि जाही ।। ¼i - 206½
सतसंगति सिउ मेलापु होइ लिव कटोरी अंम्रित भरी
पी पी कटहि बिकार ।। ¼i - 553½

धीरे&धीरे हमारा **'मायिकी अस्तित्व' इस विशेष प्रबल दामनिक वाशना का 'स्वरूप' बन जाता है।**

इस विषय को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण दिये जाते हैं —

बोतल में पड़ी **'शराब' का 'अस्तित्व'** केवल रंग&बिरंगे, कड़वे **मिश्रित घोल** (solution) **का होता है** जिसकी जानकारी या **ज्ञान भी 'फोकट' ही होता है।** उसी शराब के पैग पीने से **शराबी कोई अनोखे शारीरिक अनुभव महसूस करता है तथा** विशेष प्रकार का सरूर, मस्ती, खुशी, उमाह रूना&झुन, जोश, चाव **अनुभव करता है,** जो शराबी के तन मन में **फूट कर खुद-ब-खुद प्रकट होता है।**

दूसरे शब्दों में शराब का **पैग पी कर अथवा शराब की 'संगति' करके** — हम शराब को **'जीवन' देकर शक्तिमान बना देते हैं,** जिस के **असर अथवा प्रभाव अधीन 'शराबी' की प्रत्येक** हरकत, अदा, बोल, नजर, व्यवहार, सोच, फैसले आदि में **'शराब की रंगत' का ही प्रकटाव होता है।**

इस प्रकार कुछ समय बाद **'शराबी' का 'मायिकी अस्तित्व' शराब का 'रूप' धारण कर लेता है** तथा **वह 'शराबी' कहलाता है।**

इस प्रकार —

1. शराब ही उस का 'जीवन'
2. **'सरूर'** उसका 'जीवन रूप'
3. **'शराब' तथा 'शराबी' एक रूप**

बन जाते हैं।

जिस प्रकार मनुष्य शराब के लगातार सेवन अथवा **अभ्यास द्वारा उसका 'स्वरूप' धारण कर लेता है,** उसी प्रकार **अन्य वाशनाओं के अभ्यास द्वारा उन 'वाशनाओं का 'स्वरूप' भी बन जाता है।**

दूसरे शब्दों में, हम इन **बलहीन सूक्ष्म ख्याल स्वरूप 'वाशनाओं' को अपने लगातार अभ्यास अथवा 'कुसंगति' से इतना प्रबल तथा 'दामनिक' बना देते हैं** कि ये वाशनाएँ **'दामनिक व्यक्तित्व' का स्वरूप धारण कर लेती हैं** तथा सदा के लिए मायिकी जीव को अपना **गुलाम बनाये रखती हैं।**

इस दशा में हम इस दामनिक **'वाशनावी' व्यक्तित्व की 'कुसंगति' तथा 'गुलामी' करते हैं।**

इस वाशना की गुलामी में हम **इतने जकड़े जाते हैं कि इसके अतिरिक्त किसी अच्छे, श्रेष्ठ, सुहावने 'ख्यालों' तथा 'मनोभावों' की ओर, हमारा मन जाता ही नहीं** तथा हम **'परमार्थ' से और भी दूर तथा परे होते जाते हैं।**

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। ¼i - 133½

मंदा चितवत चितवत पचिआ
जिनि रचिआ तिनि दीना धाकु ।। ¼i - 825½

जंमणु मरणु न चुकई रंगु लगा दूजै भाइ ।।
बंधनि बंधि भवाईअनु करणा कछू न जाइ ।। ¼i - 1414½

कितनी दुखदायी तथा हास्यप्रद बात है कि **'ज्योति स्वरूप' 'मन'** अपनी घोर **अज्ञानता तथा मायिकी भ्रम/भुलाव में, इन तुच्छ दुखदायी 'वाशनाओं' का 'स्वरूप' ही बन जाता है।**

मनु मैगलु साकतु देवाना ।।
बन खंडि माइआ मोहि हैराना ।। ¼i - 415½

मन तूं गारबि अटिआ गारबि लदिआ जाहि ।।
माइआ मोहणी मोहिआ फिरि फिरि जूनी भवाहि ।। ¼i - 441½

तभी हमें गुरबाणी यूँ ताड़ना करती है —

मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु ।।
मन हरि जी तेरै नालि है गुरमती रंगु माणु ।। ¼i - 441½

जिस प्रकार **घर में जमा किये हुए कूड़े – करकट के गुब्बार से कोई बचाव नहीं हो सकता** — उसी प्रकार अन्तःकरण में **स्वयं अंगीकृत पाल-पोस कर शक्तिमान बनाई हुई 'वाशना स्वरूप' प्रबल तथा दामनिक 'वाशनावी/व्यक्तित्व' की 'कुसंगति' से कोई बचाव नहीं हो सकता,** क्योकि ये वाशना तो हमारे अन्तःकरण में **बस कर, रस/रूप होकर, समाई हुई है** तथा हमारे **आपे को 'भूत/प्रेत' की भाँति, दिन/रात चिपकी रहती है जो हमारे ऊपर 'हावी' अथवा प्रबल रहती है।**

X X X

प्रत्येक जीव में **ईश्वरीय 'ज्योति'** प्रकाशमान है।

नाम के धारे सगले जंत ।। ¼i - 284½

सभनी घटी सहु वसै सह बिनु घटु न कोइ ।। ¼i - 1412½

सृष्टि के कण/कण में **ईश्वरीय 'ज्योति' परिपूर्ण है।**

आपन सूति सभु जगतु परोइ ।। ¼i - 292½
सरब जोति तेरी पसरि रही ।। ¼i - 876½
पसरी किरणि जोति उजिआला ।। ¼i - 1033½

'ईश्वरीय ज्योति' में **'प्रेम का अंश' है** — जिस कारण प्रकृति की प्रत्येक वस्तु **एक/दूसरे की ओर 'आकर्षित' हो रही है।** इस **'आत्मिक आकर्षण' को प्यार, प्रेम, प्रीत, स्नेह आदि कहा जाता है।**

इस **'आत्मिक आकर्षण' को आकर्षण शक्ति** (gravity) **भी कहा जाता है** — जिसके नियम अनुसार, **एक ही मानसिक 'स्तर' या स्वभाव वाले जीव, एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं तथा अपने अपने मानसिक 'दायरे' में एकत्रित होकर व्यवहार करते हैं।**

Like attracts like.

यह नियम केवल 'जीवों' पर ही नहीं घटता, अपितु प्रकृति के **निर्जीव 'पदार्थ' तथा 'तत्वों' के बीच भी यही नियम घटता है।**

यदि जालंधर रेडियो स्टेशन पर 343 मीटर पर ध्वनि प्रसारित (broadcast) होती है — तब वह ध्वनि **उसी मीटर की वेवलैंग्थ पर प्रत्येक रेडियो द्वारा 'पकड़ी' अथवा 'सुनी' जा सकती है।** इस का अर्थ यह है कि ध्वनि जैसे सूक्ष्म **'तत्' का भी अपने ही अति सूक्ष्म स्तर पर ही 'मेल' हो सकता है।**

यही नियम पशु-पक्षियों, इन्सानों पर भी घटता है, जो अपने-अपने श्रेणी की टोलियों में **'मेलजोल', 'संग' अथवा 'संगति' करते हैं।**

इस नुक्ते के विषय में पहले विस्तारपूर्वक निर्णय किया जा चुका है कि —

'संगति' अथवा 'कुसंगति' किसे कहा जाता है,

भिन्न-भिन्न प्रकार की **'संगति'** तथा उसके लाभ,

भिन्न-भिन्न प्रकार की **'कुसंगति'** के हानिकारक परिणाम।

'मेलजोल', 'संग', 'सत्संगत', 'कुसंगति' के विषय में यह समस्त विचार **'बाहर मुख शख्सी स्तर' पर ही है।**

इसके अतिरिक्त **हमारे भीतर 'मानसिक स्तर'** पर भी 'मेलजोल', 'चितवन', **'संगति' अथवा 'कुसंगति' हो रही है।** ऐसी मानसिक **'संगति' या 'कुसंगति' अति सूक्ष्म श्रेणी की होती है** तथा अति 'प्रबल' होती है — जिस का प्रभाव या **परिणाम भी तीक्ष्ण तथा तीव्र** (intense and serious) **होता है।**

कहा जाता है कि **बाहर के शत्रु से तो कोई बचाव हो सकता है** — परन्तु **आन्तरिक गुप्त भेदी शत्रु से कोई बचाव नहीं हो सकता**, जिसकी **'गुप्त मार' का हमें पता ही नहीं लगता।** इसलिए इस **'भीतर छिपे बैठे' शत्रु के वार से कोई 'बचाव' भी नहीं तथा इसका वार भी अत्यन्त गहरा व खतरनाक होता है।**

हम सब ने अपने हृदय के अन्दर **दो प्रकार की 'सूचियाँ' बनायी हुई हैं–**

1. **प्यार वाली अथवा गुरमुख जनों की सूची :—** जिन्हें **याद करके अथवा ख्यालों तथा भावनाओं द्वारा 'मेल' या 'सत्संग' करके** हमारे मन तथा अन्तरआत्मा में खुशी, शान्ति, उल्हास, सिदक, विश्वास, श्रद्धा, भरोसा, प्यार, आकर्षण, हरि रस, हरि रंग, प्रिम रस, हमदर्दी, दया, क्षमा, सत्कार, परोपकार, प्रफुल्लता आदि की **दैवीय भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।**

गुरबाणी में ऐसे **उत्तम 'मेल' या 'सत्संगत'** का यूँ वर्णन किया गया है—

जिन डिठिआ मनु रहसीऐ किउ पाईऐ तिन्ह संगु जीउ ।।
संत सजन मन मित्र से लाइनि प्रभ सिउ रंगु जीउ ।। ¼i - 760½

अंतर आतमै जो मिलै मिलिआ कहीऐ सोइ ।। ¼i - 791½

राम मो कउ हरि जन मेलि मनि भावै ।।
अमिउ अमिउ हरि रसु है मीठा **मिलि संत जना मुखि पावै ।।** ¼i - 881½

कुरबाणी तिनां गुरसिखां **मनि मेली करि मेलि मिलदे ।**

¼ok-Hkk-x- 12@2½

इसे गुरबाणी में **'सत्संग', — 'साध संगति', 'सच्ची संगति' आदि कहा गया है।**

यह **'साध संगति' केवल 'व्यक्तिगत मिलाप द्वारा ही नहीं,** अपितु मानसिक स्तर पर **ख्यालों तथा मनोभावों द्वारा याद करके,** कथा, कीर्तन तथा 'यादों' द्वारा भी हो सकती है।

ऐसी उच्च दैवीय **'सत्संगत' द्वारा मन —**

किसी चाव में आता है
किसी उमाह में उमगता है
प्यार से झंकृत होता है
प्रेम स्वैपना के 'हिंडोले' में झूलता है
प्रीत-भावों की उड़ान भरता है
प्रेम-प्रकाश में लीन होता है
'अनहद धुन' में मोहित हो जाता है
'प्रिम-रस' में विस्मदित होता है
'आत्म प्रेम' से 'आकर्षित' होता है

'प्रेम-प्यार' की 'खुमारी' चढ़ती है
'आत्म छुह' का 'कम्पन' होता है
'चुप/प्रीत' के सौदे करता है
'आत्म रंग' का वाणिज्य करता है
'महा रस' का आदान/प्रदान करता है
नउ निधि 'नाम' से सांझेदारी होती है।

दूसरी ओर, हम अपने **मलिन मन द्वारा 'कुसंगति' करके 'अन्य लोगों' से — शिकवे/शिकायत, ईर्ष्या/द्वेष, निंदा/चुगली, वैर/विरोध, घृणा, कुढ़न, झगड़े आदि मोल ले लेते हैं।** इस प्रकार हम अपने मन/चित्त/अन्तःकरण में इन **घृणा वाले लोगों की 'काली सूची' बनाये जाते हैं।**

यदि ये **'काली सूची' वाले लोग हमसे दूर भी हों,** तो भी हमारा निठल्ला मलिन मन इस **'काली सूची' की 'फाइल' खोल लेता है** तथा मानसिक स्तर पर उस पर अपनी घृणा भरी **टीका/टिप्पणी का ज़हर घोलता है।** इस प्रकार उसकी **अनुपस्थिति में भी उसे ईर्ष्या/द्वेष/घृणा द्वारा याद करके अथवा 'कुसंगति' करके हम अपने मन/चित्त/अन्तःकरण को जलाते/सड़ाते रहते हैं।**

इस प्रकार जब भी **कोई 'काली सूची' वाला व्यक्ति याद आ जाये, या और कोई उसकी याद करवा दे, तब हम देर तक इस कुसंगति कारण उस के प्रति घृणा के ज़हरीले अग्नि/कुण्ड में जलते/सड़ते रहते हैं।**

आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसी **घृणा या एलरजी की अग्नि में जलते/सड़ते हुए भी** हम अपनी मलिन तथा हानिकारक **आन्तरिक कुसंगति के गुप्त ज़हर को महसूस नहीं करते,** बल्कि **एग्ज़ीमा** (aczema) **की खुजली की भाँति, इस ज़हरीली मानसिक 'खुजली' में बहुत स्वाद लेते हैं !!**

यदि 'काली सूची' वालों की कोई 'निंदा/चुगली' करे, तो वह निंदा **बहुत स्वाद/पूर्ण लगती है** तथा उसके और **अवगुण सुनने के लिए अथवा 'कुसंगति' करने के लिए अत्यंत उत्साहित रहते हैं** तथा जब भी मौका मिले, **अपनी ओर से भी ज़हरीली 'चिंगारी' लगा देते हैं।**

इस प्रकार हम 'निंदा' की ज़हरीली 'भट्ठी' अथवा 'कुसंगति' में स्वयं जलते/भुनते/सड़ते रहते हैं।

गुरबाणी में ऐसी **निंदा करने** का यूँ **निषेध** किया गया है —

निंदकु सो जो निंदा होरै ।। ¼i - 339½

निंदकु निंदा करि मलु धोवै ओहु मलभखु माइआधारी ।। ¼i - 507½

मुह काले तिना निंदका तितु सचै दरबारि ।। ¼i - 649½

निंदक की गति कतहूं नाही खसमै एवै भाणा ।। ¼i - 381½

निंदा भली किसै की नाही मनमुख मुगध करंनि ।।
मुह काले तिन निंदका नरके घोरि पवंनि ।। ¼i - 755½

यदि अपने आँगन में गन्दगी का 'कूड़ा-करकट' एकत्र करके ढक दिया जाये तो भी **गन्दगी की 'भड़ास'** कभी न कभी बाहर निकलती रहती है, जिससे आस-पास का समस्त वातावरण घुटन भरा हो जाता है।

मलिन विचारों तथा भावनाओं को **बार-बार याद करके, अभ्यास अथवा 'कुसंगति' द्वारा,** हम इन की ज़हरीली रंगत को मन-चित्त-अन्तःकरण में **दृढ़ कर लेते हैं।** धीरे-धीरे **मलिन तथा ज़हरीले ख्यालों को घोट-घोट कर प्रबल तथा दामनिक बना लेते हैं।** इस प्रकार मलिन ख्यालों वाले भावों के **लगातार अभ्यास अथवा** 'कुसंगति' से यह **'मानसिक मलिनता' की दुर्गन्ध हमारे अन्दर धँस-बस कर, रस रूप होकर हमारा व्यक्तित्व ही बन जाती है।** ऐसे स्वयं बनाये हुए **'मलिन व्यक्तित्व'** में से कोई **उत्तम-श्रेष्ठ-सुहानी 'भावना' उत्पन्न ही नहीं हो सकती।** ऐसे **'मलिन व्यक्तित्व'** में से तो **तुच्छ मलिन ज़हरीले ख्याल तथा मनोभाव ही उत्पन्न होते हैं, जो अति हानिकारक होते हैं।**

दूसरे शब्दों में, यदि स्वयं बनायी **'काली सूची' में से किसी —**

उपस्थित या अनुपस्थित
पास या दूर
जीवित या मृत

हस्ती को याद करके —

नुक्ताचीनी करते हैं
अवगुण छाँटते हैं
छिद्र खोलते हैं
द्वैत करते हैं
निंदा करते हैं

घृणा करते हैं
बुरा चाहते हैं
वैर&विरोध की भावना उत्पन्न होती है

तब हम उससे 'कुसंगति' करते हैं।

यदि ऐसी **'कुसंगति'** करते हुए उस हस्ती बाबत —

नाक चढ़ाते हैं
माथे पर बल डालते हैं
जलते&सड़ते हैं
ज़हर में उबलते हैं
तन&बदन में आग लगती है
निंदा सुन कर स्वाद लेते है
दुखी देख कर खुश होते हैं
नुक्सान देख कर खुश होते हैं
उन्नति देख कर जलते हैं
प्रशंसा नहीं सुन सकते
गुणों पर भी अपनी मैली रंगत चढ़ा देते हैं,

तब यह पक्का प्रमाण है कि हमारा मन अति मलिन हो चुका है, जिस कारण स्वयं लगाये हुए **ज़हरीले अग्नि कुण्ड में दिन रात स्वयं ही जलते&भुनते&सड़ते रहते हैं।** इस प्रकार तुच्छ ख्यालों, भावों तथा रुचियों से अपने अमूल्य जीवन को **बरबाद कर रहे हैं** तथा अपनी मलिन ज़हरीली किरणें **विश्व में फैला रहे हैं।**

जउ देखै छिद्रु तउ निंदकु उमाहै भलो देखि दुख भरीऐ ।।
आठ पहर चितवै नही पहुचै बुरा चितवत चितवत मरीऐ ।। ¼i - 823½

निंदक दुसट वडिआई वेखि न सकनि
ओन्हा पराइआ भला न सुखाई ।। ¼i - 850½

ऐसी गिरी हुई **मलिन मानसिक दशा में जो भी कर्म&काण्ड, पाठ&पूजा, धार्मिक साधना तथा परमार्थ के कर्म&क्रिया करते हैं, सब व्यर्थ तथा निष्फल ही होते हैं।**

मनि मैले भगति न होवई नामु न पाइआ जाइ ।। ¼i - 39½
नाम सगि मनि प्रीति न लावै ।।
कोटि करम करतो नरकि जावै ।। ¼i - 240½

हउ हउ करते करम रत ता को भारु अफार ।।
प्रीति नही जउ नाम सिउ ततु एऊ करम बिकार ।। ¼i - 252½

जेते जतन करत ते डूबे भव सागरु नही तारिओ रे ।।
करम धरम करते बहु संजम अहंबुधि मनु जारिओ रे ।। ¼i - 335½

तीरथ नाइ न उतरसि मैलु ।।
करम धरम सभि हउमै फैलु ।। ¼i - 890½

मनमुख चंचल मति है अंतरि बहुतु चतुराई ।।
कीता करतिआ बिरथा गइआ इकु तिलु थाइ न पाई ।। ¼i - 1414½

करम धरम सुचि संजमु करहि अंतरि लोभु विकार ।।
नानक मनमुखि जि कमावै सु थाइ न पवै दरगह होइ खुआरु ।।
¼i - 1423½

गुरबाणी में **स्वयं रचित मलिन तथा ज़हरीले 'भवजल' में से निकलने का एक मात्र साधन 'सत्संगत' अथवा 'साध संगत' ही बताया गया है—**

मिलि सतसंगति हरि गुण गाए जगु भउजलु दुतरू तरीऐ जीउ ।।
¼i - 95½

साध कै संगि उनि भउजलु तरिआ
सगल दूत उनि साधे जीउ ।। ¼i - 102½

साधू संगि तरीजै सागरु कटीऐ जम की फासा जीउ ।। ¼i - 108½

दुतरु तरे साध कै संगि ।। ¼i - 185½

तारीले भवजलु तारू बिखड़ा बोहिथ साधू संगा ।। ¼i - 208½

साध संगति कै अंचलि लावहु बिखम नदी जाइ तरणी ।। ¼i - 702½

उपरोक्त विचार का संक्षिप्त निचोड़ यूँ दर्शाया जा सकता है —

1. हम अपनी **बाहरमुख, स्थूल वृत्ति अनुसार केवल बाहरी शारीरिक 'मेल' को ही 'संगति' या 'कुसंगति' समझे हुए हैं** — जिसका प्रभाव **दिखावटी होने के कारण** शीघ्र ही **उतर सकता है या बदल सकता है।**
2. हमारे मन, चित्त, अन्तःकरण की **सूक्ष्म स्तर पर ख्यालों, भावों, मनोभावों का अत्यन्त** गुप्त, गहरा, तीव्र, तीक्ष्ण, प्रबल, दामनिक, न मिटने वाला, **अति सूक्ष्म 'प्रभाव' पड़ता है, जिसका हमें पता ही नहीं लगता।**

धीरे-धीरे अनजाने ही यह **सूक्ष्म गुप्त दामनिक प्रभाव हमारा समस्त 'जीवन' अथवा 'व्यक्तित्व' ही 'बदल' देता है।** ऐसी सूक्ष्म दामनिक **स्वयं रचे 'व्यक्तित्व' को पुनः बदलना अति कठिन या असम्भव है।**

3. आम जनता को समझाने के लिए **'साध संगति' तथा कुसंगति के 'लक्षणों' का 'निर्णय' यूँ किया जाता है —**

सूक्ष्म 'सत्संगत' के लक्षण		**'कुसंगति' के लक्षण**
आत्मिक ज्ञान है	–	मायिकी भ्रम/भुलाव है
तू/तेरी है	–	मैं/मेरी है
शुक्र है	–	शिकायत है
प्यार है	–	घृणा है
मेल मिलाप है	–	ईर्ष्या/द्वेष है
सांझेदारी	–	वैर-विरोध
स्वयं को न्यौछावर करना	–	स्वार्थ
नाम/बाणी से जुड़ना	–	माया में गलतान
'सुख रैण विहाणी'	–	दुख क्लेश में कुढ़ना
प्रेम स्वैपना	–	मायिकी कुढ़न
प्रेम आकर्षण है	–	खींचतान है
हुकम रजाई चलणा	–	मन मर्जी करना
नम्रता	–	अहंकार
निर्मलता	–	मैल
आत्मिक सुगन्धि	–	मायिकी दुर्गन्ध

इस वर्णन से जिज्ञासु सहज ही **निर्णय** कर सकते है कि उनका मन **'दैवीय' ख्यालों तथा मनोभावों से 'सत्संगत' या 'साध संगति' करता है, या 'कुसंगति' करता है।**

इस 'निर्णय' द्वारा हम अपने **'जीवन' को नवीन आत्मिक दिशा देकर बदल सकते हैं तथा अपना जीवन सार्थक व सफल बना सकते हैं।**

(क्रमशः .....)